International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के प्रति न्यायिक परिसीमन का अध्ययन

शमशाद अली*
द ग्लोकल यूनिवर्सिटी सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ कुलदीप सिंह**
द ग्लोकल यूनिवर्सिटी सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

सारांश

यह अध्ययन महिलाओं की हिंसा के खिलाफ कानूनी सुरक्षा उपायों के कारण, उद्देश्य, उत्पत्ति के लिए भी समर्पित हैं। मौजूदा कानूनी सुरक्षा उपायों का समर्थन और विरोध भी शोध का विषय है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा से संबंधित निर्णय की मदद से न्यायिक प्रतिक्रिया का भी पता लगाना है कि न्यायपालिका ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा की समस्या पर कैसे और किस तरह से कार्य किया और प्रतिक्रिया दी। महिलाओं के खिलाफ हिंसा एक संक्रामक बीमारी है, इसलिए महिलाओं के खिलाफ हिंसा का मुकाबला करना बहुत मुश्किल है जब तक कि सरकार महिलाओं के खिलाफ हिंसा की बढ़ती वृद्धि और विकास को रोकने के लिए आवश्यक सभी उपाय नहीं अपनाती है। अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा से सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से कैसे निपटा जा सकता है।

मुख्यशब्द- न्यायिक परिसीमन, कानूनी सुरक्षा, न्यायपालिका, महिलाओं के खिलाफ हिंसा, सामाजिक कानूनी चुनौतिया

प्रस्तावना

यह अध्याय महिलाओं के खिलाफ हिंसा के पहलुओं और न्यायिक चित्रण पर केंद्रित है। मूल रूप से इस अध्याय के अंतर्गत हम महिलाओं के खिलाफ हिंसा के पहलू पर अदालत के समक्ष लाए गए विभिन्न न्यायिक निर्णयों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे। इस अध्याय में महिलाओं के खिलाफ हिंसा से संबंधित विभिन्न मामलों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। हम यह भी समझने की कोशिश करेंगे कि न्यायपालिका कैसे और किस तरह से महिलाओं के खिलाफ हिंसा से निपटने में सक्षम है या उसने कितना प्रयास किया है। मामले के कानूनों की तथ्यात्मक स्थिति

एकात्मक नहीं है बल्कि मामले-दर-मामले अलग-अलग होती है। हम अपने अध्ययन से यह भी पता लगाएंगे कि न्यायपालिका द्वारा निभाई गई भूमिका सशक्त और महत्वपूर्ण है या नहीं। इस संबंध में सवाल यह है कि क्या न्यायपालिका महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर अंकुश लगाने में सफल होती है। न्यायपालिका कैसे और किस तरह से महिलाओं के खिलाफ हिंसा को कम करने में सक्षम हो सकती है। क्योंकि, अगर कोई उम्मीद है तो वह सिर्फ न्यायपालिका से है क्योंकि प्रशासन महिलाओं के खिलाफ होने वाली जघन्य गतिविधियों को रोकने में पूरी तरह से विफल है। इसलिए न्यायपालिका की जिम्मेदारियां दोगुनी हो जाती हैं. न्यायपालिका के समक्ष दूसरी समस्या यह है कि मामलों की तथ्यात्मक स्थिति अधिकतर विभिन्न प्रकृति की होती है। यह न्यायपालिका को ऐसे निर्णय लेने के लिए बाध्य करता है जो आम तौर पर तथ्यात्मक प्रकृति के होते हैं।

न्यायिक चित्रण और हिंसा के रूप

बलात्कार

भारत में बलात्कार महिलाओं पर अत्याचार का सबसे बुरा रूप है। बलात्कार शब्द को भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 375 के तहत परिभाषित किया गया है। बलात्कार शब्द और उनके विभिन्न आयामों को न्यायपालिका द्वारा इस प्रकार समझाया गया है

कोप्पुला वेंकटराव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि"

“बलात्कार का अपराध गठित करने के लिए यह अनिवार्य शर्त है कि बलात्कार का अपराध प्रवेश है, और बलात्कार का गठन करने के लिए प्रवेश पर्याप्त है और स्खलन की आवश्यकता नहीं है। प्रवेश के बिना स्खलन बलात्कार का प्रयास है, न कि वास्तविक बलात्कार; आईपीसी की धारा 375 में दी गई बलात्कार की परिभाषा किसी भी संभोग को संदर्भित करती है और इसलिए धारा 375 का स्पष्टीकरण यह प्रदान करता है कि बलात्कार के अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक संभोग का गठन करने के लिए प्रवेश पर्याप्त है। इंटरकोर्स का मतलब है बिना सहमति वाली महिला के साथ यौन संबंध बनाना।" दिलीप सिंह बनाम बिहार राज्य के मामले में, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि “इच्छा और सहमति अक्सर आपस में जुड़ जाती है, और कोई कार्य जो व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध किया गया हो, ऐसा कहा जा सकता है।” सहमति के बिना किया गया कार्य हो, भारतीय दंड संहिता इन दोनों

अभिव्यक्तियों को यथासंभव व्यापक बनाने के लिए अलग-अलग शीर्षकों के तहत वर्गीकृत करती है।

दहेज के लिए हत्या, दहेज हत्या या उनके प्रयास

"दहेज मृत्यु" शब्द विवाहित महिलाओं की अप्राकृतिक मौतों को संदर्भित करता है जो शादी की तारीख के सात साल के भीतर होती हैं और दहेज की मांग के कारण होती हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 304 में, "दहेज मृत्यु" वाक्यांश को परिभाषित किया गया था (बी)।

वड्डे रामा राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने वर्णन किया कि:

"इसके वास्तविक अर्थ में, भारतीय दंड संहिता की धारा 304बी तब लागू होगी जब पति द्वारा अपने किसी रिश्तेदार पर, या दहेज की मांग के संदर्भ में, शारीरिक चोट या मौत से ठीक पहले ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न किया गया हो। जलता हुआ। संक्षेप में कहें तो उसकी शादी के सात साल के भीतर असामान्य परिस्थितियों में मृत्यु हो जानी चाहिए थी। ऐसी परिस्थितियों में, जैसा भी मामला हो, पति या रिश्तेदार को उसकी मृत्यु का कारण माना जाएगा और दहेज हत्या के लिए दंड का भागी होगा।

सतवीर सिंह बनाम पंजाब राज्य180 के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि:

"भारतीय दंड संहिता की धारा 304बी के तहत अभियोजन इस सबूत के बोझ से नहीं बच सकता कि क्रूरता के लिए उत्पीड़न दहेज की मांग से जुड़ा था और ऐसा उसकी मृत्यु से तुरंत पहले किया गया था।" भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मनोहर लाल बनाम हरियाणा राज्य के मामले में घोषणा की कि अनुमान केवल निम्नलिखित कारकों के प्रमाण पर ही बढ़ाया जा सकता है:

1) "अदालत के समक्ष यह प्रश्न अवश्य उठाया जाना चाहिए कि क्या आरोपी ने एक महिला की दहेज हत्या की है।

2) क्या महिला के साथ उसके पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न किया गया था।

3) क्या ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की किसी मांग के लिए था या उसके संबंध में था।

4) क्या ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न उसकी मृत्यु से ठीक पहले हुआ था।

5) क्या यह दर्शाया गया है कि महिला के साथ उसकी मृत्यु से ठीक पहले ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न किया गया था।

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

छेड़छाड़

किसी महिला की गरिमा को ठेस पहुंचाने के उद्देश्य से उस पर हमला या गैरकानूनी बल का प्रयोग धारा 354 में अपराध के रूप में परिभाषित किया गया है।

किसी महिला के शील का उल्लंघन करने वाली बात को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने राजू पांडुरंग महाले बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में परिभाषित किया है। सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित नोट किया:

"एक महिला की विनम्रता का सार उसका लिंग है। मामले की जड़ आरोपी का दोषी इरादा है। महिला की प्रतिक्रिया बेहद प्रासंगिक है, लेकिन इसकी अनुपस्थिति हमेशा प्रकृति में निर्णायक नहीं होती है। इस धारा के अंतर्गत विनम्रता एक वर्ग के रूप में महिला मनुष्यों से जुड़ा एक गुण है। यह एक ऐसा गुण है जो एक महिला को उसके लिंग के कारण मिलता है। किसी महिला को खींचना, उसकी साड़ी उतारना, साथ ही संभोग के लिए अनुरोध करना, ऐसा है जो एक महिला की गरिमा का अपमान होगा; और यह ज्ञान, कि शील को अपमानित किया जा सकता है, किसी जानबूझकर इरादे के बिना केवल अपने उद्देश्य के लिए इस तरह के अपमान को अपराध बनाने के लिए पर्याप्त है।

विवाह से संबंधित अपराध

धारा 493 किसी व्यक्ति द्वारा धोखे से वैध विवाह का विश्वास उत्पन्न करके सहवास करने से संबंधित है।

बोधिसत्व गौतम बनाम सुभ्रा चक्रवर्ती के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि:

"आरोपी ने न केवल शिकायतकर्ता को बहकाया, बल्कि उसके साथ सहवास भी किया, उसे शादी का झूठा आश्वासन दिया, बल्कि धोखे से कुछ विवाह समारोहों के माध्यम से यह जानकारी भी दी कि वैध विवाह नहीं था और इस तरह बेईमानी से शिकायत को यह विश्वास दिला दिया कि वह कानूनी रूप से विवाहित थी। आरोपी की पत्नी. जिस तरह से आरोपी ने शिकायतकर्ता का शोषण किया और उसे छोड़ दिया, वह गंभीर क्रूरता के अलावा और कुछ नहीं है क्योंकि इससे शिकायतकर्ता के मानसिक और शारीरिक रूप से गंभीर चोट और स्वास्थ्य को खतरा हुआ है।

धारा 494 पति या पत्नी के जीवित रहते हुए पुनर्विवाह के अपराध के बारे में बात करती है। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने एस.राधिका समीना बनाम SHO, हबीबनगर पुलिस स्टेशन में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"विशेष विवाह अधिनियम के तहत शादी करने के बाद, यदि कोई व्यक्ति दोबारा दूसरी शादी करता है, तो उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 494 या 495 के तहत अपराध माना जाएगा। इसलिए, विशेष विवाह अधिनियम के तहत विवाहित व्यक्ति यदि अपने जीवनसाथी के जीवनकाल के दौरान दोबारा शादी करता है, तो वह द्विविवाह करता है, और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि दूसरी शादी के समय वह किस धर्म को मानता है। विशेष विवाह अधिनियम स्पष्ट रूप से केवल एक विवाह पर विचार करता है और अधिनियम के तहत विवाहित व्यक्ति केवल अपना धर्म बदलकर इसके प्रावधानों से बच नहीं सकता है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

यह विशेष कानून महिलाओं को घरेलू दुर्व्यवहार से बचाने के लिए विकसित किया गया था। लेकिन दुखद बात यह है कि घरेलू दुर्व्यवहार हमारे समाज में एक व्यापक समस्या है। भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498ए अब किसी महिला के लिए उसके पति या उसके परिवार द्वारा दुर्व्यवहार को गैरकानूनी बनाती है। घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 की धारा 2 (क्यू) में "प्रतिवादी" शब्द के अर्थ के संबंध में ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय दोनों के फैसले को भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में पलट दिया है। संध्या मनोज वानखड़े बनाम मनोज भीमराव वानखड़े और अन्य। अदालत ने यह भी माना कि: "यह निर्विवाद रूप से सच है कि धारा 2 (क्यू) के परंतुक में भी महिला शब्द का उपयोग नहीं किया गया है, लेकिन, इसके विपरीत, यदि विधायिका का इरादा महिलाओं को शिकायत के दायरे से बाहर करने का है , जो एक पीड़ित पत्नी द्वारा दायर किया जा सकता है, महिलाओं को विशेष रूप से बाहर रखा जाएगा, बजाय इसके कि प्रावधान में यह प्रावधान किया गया है कि पति के किसी रिश्तेदार या पुरुष साथी के खिलाफ भी शिकायत दर्ज की जा सकती है। सापेक्ष अभिव्यक्ति को कोई प्रतिबंधात्मक अर्थ नहीं दिया गया है, न ही उक्त अभिव्यक्ति को केवल पुरुषों के लिए विशिष्ट बनाने के लिए घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के भीतर विशेष रूप से परिभाषित किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, यह बहुत स्पष्ट है कि विधायिका का इरादा कभी भी पति या पुरुष साथी की महिला रिश्तेदारों को शिकायत के दायरे से बाहर करने का नहीं था, जो घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के तहत की जाएगी।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000

भारत में महिलाओं के ख़िलाफ़ साइबर अपराध का स्तर भयावह है, जिससे महिलाओं की सुरक्षा ख़तरे में है। वाक्यांश "महिलाओं के विरुद्ध साइबर अपराध" का उपयोग भारत में ऑनलाइन यौन हमलों और अपराधों के संदर्भ में किया जाता है। साइबर अपराध से निपटने के लिए, भारत ने 2000 का सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम बड़े पैमाने पर क्रमशः वाणिज्यिक और आर्थिक अपराध को कवर करता है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 की धारा 67, जो इलेक्ट्रॉनिक रूप में अश्लील सामग्री के प्रकाशन या प्रसारण पर रोक लगाती है, का उपयोग महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराध पर मुकदमा चलाने के लिए किया जा सकता है।

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013

भारत में कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न के महत्व को भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य के ऐतिहासिक मामले में प्रकाश में लाया था और यौन उत्पीड़न से बचने के उपायों को लागू करने के लिए कंपनियों के लिए सिफारिशें प्रकाशित की थीं। कार्यस्थल पर, साथ ही समझौते या कानूनी कार्रवाई के माध्यम से यौन उत्पीड़न के मामलों को कैसे हल किया जाए, इसके बारे में जानकारी प्रदान करना।

महिलाओं को उनके रोजगार के स्थान पर यौन उत्पीड़न से बचाने के लक्ष्य के साथ, संसद ने आखिरकार कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित कर दिया, शुरुआत में सुझाव दिए जाने के 16 साल बाद। कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न से बचाने और यौन उत्पीड़न की शिकायतों और उनसे संबंधित किसी भी कठिनाई को रोकने और संबोधित करने के लिए कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 को कानून में पेश किया गया था।

परिधान निर्यात संवर्धन परिषद बनाम ए.के. के मामले में चोपड़ा, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक समस्या से निपटते हुए कहा कि "क्या एक वरिष्ठ अधिकारी का कार्य जिसमें ऐसे वरिष्ठ अधिकारी ने अपनी कनिष्ठ महिला कर्मचारी के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की, यौन उत्पीड़न की श्रेणी में आएगा, न्यायालय ने इस शब्द की परिभाषा पर भरोसा किया" 'यौन उत्पीड़न' उच्चतम न्यायालय द्वारा विशाखा निर्णय में निर्धारित की गई है, जो

अधिनियम में प्रदान की गई यौन उत्पीड़न की परिभाषा के समान है, जिसमें कहा गया है कि प्रतिवादी का कृत्य एक वरिष्ठ अधिकारी से अपेक्षित उत्कृष्ट आचरण और व्यवहार के लिए अशोभनीय था और निस्संदेह के बराबर था। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न।"

अधिनियम ने अंततः "घरेलू कार्यकर्ता" को शामिल करके भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के दायरे को व्यापक बनाने की मांग की है, जिसे एक महिला के रूप में परिभाषित किया गया है जो मुआवजे के लिए किसी भी घर में घरेलू कर्तव्यों को पूरा करने के लिए नियोजित है, चाहे नकद में हो या सीधे तौर पर या किसी एजेंसी के माध्यम से अस्थायी, स्थायी, अंशकालिक या पूर्णकालिक आधार पर। हालाँकि, नियोक्ता का कोई भी रिश्तेदार इस परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है।

भारतीय बलात्कार कानून में लाए गए कानूनी बदलाव

निर्णय के पीछे के तर्क के कारण, कई विरोध प्रदर्शन और महत्वपूर्ण सार्वजनिक आक्रोश हुए, जिसके परिणामस्वरूप अंततः भारत में बलात्कार कानूनों में संशोधन हुआ। जिस समय मथुरा बलात्कार कांड हुआ था उस समय हमारे देश में बलात्कार कानून पूरी तरह से बलात्कारियों के पक्ष में झुके हुए थे। इस फैसले के बाद जो सबसे ज्यादा सवाल उठा, वह सहमति की अवधारणा को लेकर था क्योंकि पहले महिलाओं के लिए यह साबित करना बेहद मुश्किल था कि उन्होंने किसी भी कामुकता के लिए सहमति नहीं दी थी। इसलिए, इस ऐतिहासिक मामले के फैसले के बाद, आपराधिक कानून (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1983 आया जिसने भारतीय बलात्कार कानून के भीतर कई बदलाव लाए जैसे कि बलात्कार अभियोजन में जहां यह पहले ही स्थापित हो चुका है कि आरोपी यौन गतिविधि में शामिल है, यदि पीड़िता का दावा है कि उसने सहमति नहीं दी थी, भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 114 (ए) के अनुसार, जिसे आपराधिक कानून (द्वितीय संशोधन) अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था, अदालत यह मान लेगी कि उसने कानून की खंडन योग्य धारणा के रूप में सहमति नहीं दी थी। भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376 में बदलाव किया गया जिसमें धारा 376(ए), 376(बी), 376(सी) और 376(डी) जोड़ी गईं जिन्हें आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 2013 द्वारा और संशोधित किया गया। अधिनियम "हिरासत में बलात्कार" के अपराध को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376(2) में जोड़ता है, जो पीड़िता के राज्य की हिरासत में रहने के दौरान किए

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

गए अपराधों पर लागू होता है। धारा 376(2) का उल्लंघन करने वालों पर जुर्माना और कठोर कारावास, जिसकी अवधि 10 साल से कम नहीं होनी चाहिए, लेकिन आजीवन हो सकती है, दोनों लगाए जाते हैं।

अधिनियम ने सबूत के बोझ के विचार में संशोधन किया जो हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है। संशोधन के बाद, बलात्कार के उन मामलों में जहां यौन संबंध पहले ही स्थापित हो चुका है, सबूत का बोझ आरोपी पर होगा। अधिनियम ने भारतीय दंड संहिता, 1860 में धारा 228ए पेश की, जो बलात्कार पीड़ितों की पहचान और ऐसे किसी भी मामले के बारे में किसी भी प्रकाशन पर रोक लगाती है जिसके माध्यम से पीड़ित की पहचान जानी जा सकती है, बाद में आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 2013 द्वारा संशोधित किया गया। इसलिए, मथुरा बलात्कार मामला स्मारकीय था सामाजिक और कानूनी दोनों परिप्रेक्ष्यों के संदर्भ में, जिसने भारत में पहली बार बहुत बड़े स्तर पर बलात्कार के मामलों के लिए भारी विरोध प्रदर्शन और सार्वजनिक आक्रोश पैदा किया और जिसके कारण आपराधिक कानून के माध्यम से भारतीय बलात्कार कानून में इतने सारे सुधार हुए (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1983।

गर्भधारण पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994

भारतीय कानूनी प्रणाली सेक्स प्राथमिकता को एक गंभीर मुद्दा मानती है। क्योंकि अजन्मे बच्चे अभी भी शिशु होते हैं, अधिकांश पारंपरिक परिवार जो लड़कियों के साथ भेदभाव करते हैं, वे अजन्मे बच्चे का जन्म होने से पहले ही गर्भपात कराने का विकल्प चुनते हैं। भारतीय समाज में लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है, जिससे धर्म के प्रभाव का भी लाभ मिलता है, क्योंकि वे परिवार का उपनाम जारी रखेंगे, बूढ़ों की देखभाल करेंगे और शादी करने पर परिवार पर आर्थिक बोझ नहीं डालेंगे। कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए, भारत सरकार ने 1994 में प्री-नेटल डायग्नोस्टिक (विनियमन और दुरुपयोग की रोकथाम) अधिनियम पारित किया। इस कानून का महान उद्देश्य गर्भधारण से पहले या बाद में लिंग चयन विधियों के उपयोग पर रोक लगाना और दुरुपयोग को समाप्त करना है। लिंग-चयनात्मक गर्भपात के लिए प्रसवपूर्व अवधि। प्री-कंसेप्शन और प्री-नेटल डायग्नोस्टिक तकनीक (लिंग चयन पर प्रतिबंध) अधिनियम (पीसीपीएनडीटी एक्ट) को 2003 में प्री-नेटल डायग्नोस्टिक तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग की रोकथाम) अधिनियम 1994 को बदलने और

उपयोग की जाने वाली तकनीक को बेहतर ढंग से विनियमित करने के लिए अद्यतन किया गया था।

कन्या भ्रूण हत्या की प्रथा

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सेंटर फॉर इंक्वायरी इनटू हेल्थ एंड अलाइड थीम्स (सीईएचएटी) और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के ऐतिहासिक मामले में कन्या भ्रूण हत्या के मुद्दे को संबोधित किया और निम्नलिखित को बरकरार रखा: "यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि किसी न किसी कारण से, कन्या भ्रूण हत्या की प्रथा अभी भी चलन में है, इस तथ्य के बावजूद कि बेटी के कोमल स्पर्श और उसकी आवाज़ का माता-पिता पर सुखद प्रभाव पड़ता है। इसका एक कारण माता-पिता द्वारा सामना की जाने वाली विवाह संबंधी समस्याएं और साथ ही तथाकथित शिक्षित और/या अमीर व्यक्तियों द्वारा दहेज की मांग हो सकती है, जो समाज में काफी सम्मानित हैं। कन्या भ्रूण हत्या की बहुत ही वीभत्स पारंपरिक प्रणाली जिसमें जन्म के बाद कन्या शिशु को जहर देकर या भूसी दबाकर मार दिया जाता था, उन्नत चिकित्सा तकनीकों का लाभ उठाकर एक अलग रूप में जारी है। दुर्भाग्य से, जन्म से पहले ही लड़की से छुटकारा पाने के लिए विकसित चिकित्सा विज्ञान का दुरुपयोग किया जाता है। यह भली-भांति जानते हुए कि यह अनैतिक और अनैतिक है और साथ ही यह अपराध की श्रेणी में आ सकता है; योग्य और अयोग्य डॉक्टरों या कंपाउंडरों द्वारा लड़की के भ्रूण का गर्भपात किया जाता है। इससे विभिन्न राज्यों में समग्र लिंगानुपात प्रभावित हुआ है जहां कन्या भ्रूण हत्या बिना किसी बाधा के प्रचलित है।"

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पीएनडीटी अधिनियम, 1994 को लागू करने के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकार के साथ-साथ संबंधित अधिकारियों को विभिन्न दिशानिर्देश जारी किए। 2001 से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पीएनडीटी अधिनियम, 1994 को लागू करने के लिए पारित दिशानिर्देशों के बावजूद, कई राज्यों ने ऐसा नहीं किया। अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया जा रहा है। इसलिए, उड़ीसा के उच्च न्यायालयों में जनहित याचिकाएँ दायर की गईं। हेमंत रथ बनाम भारत संघ के मामले में, माननीय उच्च न्यायालय ने पीएनडीटी अधिनियम, 1994 को लागू करने के लिए सक्रिय भूमिका निभाई। इस मामले का संक्षिप्त तथ्य उड़ीसा राज्य में सैकड़ों कंकाल, खोपड़ी और शरीर के अंग हैं। बड़ी संख्या में शिशुओं को बरामद किया गया, जिसने आम आदमी को चौंका दिया। चूंकि ये विभिन्न नर्सिंग होम और क्लिनिकों के नजदीक के क्षेत्र में पाए गए

International Journal for Innovative Engineering and Management Research
PEER REVIEWED OPEN ACCESS INTERNATIONAL JOURNAL
www.ijiemr.org

थे, इसलिए यह मजबूत आरोप लगाया गया था कि लिंग चयन और प्रसव पूर्व लिंग निर्धारण की प्रथा अभी भी प्रचलित थी। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में इस आशय की समाचारों की एक श्रृंखला देखने के बाद, एक सामाजिक कार्यकर्ता श्री हेमंत रथ ने उड़ीसा के उच्च न्यायालय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक जनहित याचिका दायर की और प्रभावी दिशा-निर्देश मांगे। राज्य में पीएनडीटी एक्ट लागू करना। याचिका में तर्क यह दिया गया था कि अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने में केंद्र और राज्य सरकार दोनों की ओर से पूरी तरह से निष्क्रियता थी। यह माना गया कि यह निर्णय प्रकृति में बहुत सकारात्मक है, जो अधिनियम के प्रावधानों के सख्त कार्यान्वयन को प्रोत्साहन देता है। यह निर्णय स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जब कार्यपालिका में लाभकारी कानून के प्रावधानों को लागू करने की इच्छाशक्ति की कमी होती है, तो न्यायपालिका को सक्रिय भूमिका निभानी होती है और वह इसे बखूबी निभाती है।

बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006

भारत में बाल विवाह एक प्रथा है. समाज में सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं ने बाल विवाह को मंजूरी दे दी है। बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929, जिसे शारदा अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है, बाल विवाह को एक सामाजिक बुराई और अपराध दोनों बनाने के लिए भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले पारित किया गया था। 1929 के बाल विवाह निरोधक अधिनियम ने क्रमशः 18 और 15 वर्ष से कम उम्र के पुरुषों और लड़कियों के लिए बाल विवाह को गैरकानूनी घोषित कर दिया। यह अधिनियम सभी भारतीय नागरिकों पर लागू होता है, चाहे उनकी जाति, नस्ल या धर्म कुछ भी हो। कानून को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए 1978 में लड़कों और लड़कियों के लिए आयु प्रतिबंध बढ़ाकर क्रमशः 18 और 21 वर्ष कर दिया गया। 1929 बाल विवाह निरोधक अधिनियम, संशोधित के रूप में। फिर भी, नियम के बावजूद, देश भर में किशोरावस्था में शादियाँ होती रहीं। बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006, एक और अधिनियम है जिसे भारतीय विधायिका ने अपनाया है। यह अधिनियम कम उम्र में विवाह करने पर रोक लगाने से संबंधित या उससे जुड़ी वस्तुओं के लिए प्रावधान करता है।

निष्कर्ष

सामाजिक दृष्टिकोण और कानून के बीच महत्वपूर्ण अंतर के कारण, महिलाओं के खिलाफ हिंसा और सामाजिक भलाई को संबोधित करने के विधायिका के लक्ष्य को

हासिल करना लगभग मुश्किल प्रतीत होता है। समाज में महिलाओं के प्रति हिंसा के संबंध में दोहरी मानसिकता है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा के संबंध में समाज में विशेष रूप से खराब रवैया है, इस तथ्य के बावजूद कि कानून ने इस व्यवहार को असामान्य करार दिया है। हालाँकि, जब भी कोई महिला हिंसा की शिकार होती है, तो समाज स्वचालित रूप से यह मान लेता है कि 'महिला ही दोषी होगी'। यह औचित्य कि महिलाओं को उनके खिलाफ हिंसा के कृत्यों के लिए दोषी ठहराया जाता है, समाज द्वारा हमेशा इस्तेमाल किया जाएगा। इस प्रकृति के तर्क सुझाव देते हैं कि समग्र रूप से समाज को महिलाओं के खिलाफ हिंसा के प्रति सामाजिक सहिष्णुता प्रदर्शित करनी चाहिए। हम पुरुषों को महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार करते देखने के आदी हो गए हैं, इसलिए जब हम इसे देखते हैं तो हमें खतरा महसूस नहीं होता है। छेड़छाड़ और छेड़छाड़ को मर्दाना व्यवहार के रूप में देखा जाता है। चूँकि समाज महिलाओं के ख़िलाफ़ इस कथित हिंसा के बारे में सुनने का इतना आदी हो गया है, इसलिए इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

गीतांजलि गंगोली, भारतीय नारीवाद: भारत में कानून, पितृसत्ता और हिंसा (एशगेट, हैम्पशायर, 2007)।

निवेदिता मेनन, जेंडर एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999)।

रत्ना कपूर और ब्रेंडा कॉसमैन, सबवर्सिव साइट्स: फेमिनिस्ट एंगेजमेंट विद लॉ इन इंडिया (सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1996)।

पारस दीवान, और पीयूषी दीवान, महिला और कानूनी सुरक्षा (डीप एंड डीप प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984)।

बी.के. पाल (सं.), भारतीय महिलाओं की समस्याएं और चिंताएं (एबीसी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987)।

राम आहूजा, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा (रावत प्रकाशन, जयपुर, 1998)

सुषमा सूद, (सं.), महिलाओं के विरुद्ध हिंसा (अरिहंत पब्लिशर्स, जयपुर, 1990)।

शिरीन कुडचेडकर, और सबिहा अर-एलएसए (सं.), महिलाओं के खिलाफ हिंसा, महिलाओं के खिलाफ हिंसा (पेनक्राफ्ट इंटरनेशनल, दिल्ली, 1998)।

प्रीति मिश्रा, महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा कानूनी और न्यायिक प्रतिक्रिया (डीप एंड डीप पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2006)।

नंदिता सैका, भारतीय महिला एक सामाजिक-कानूनी परिप्रेक्ष्य (धारावाहिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008)।

अरुणा गोयल (संस्करण), महिलाओं के मुद्दों और परिप्रेक्ष्य के खिलाफ हिंसा (डीप एंड डीप प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006)।

देबोलिना मुखर्जी, महिलाओं के खिलाफ हिंसा: भारतीय राज्य की कानूनी पहल का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण (2019) (अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, जादवपुर विश्वविद्यालय कोलकाता)

पूजा गर्ग, पंचकुला, हरियाणा में महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा: एक सामाजिक-कानूनी अध्ययन (2021) (अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़)।

सुदर्शन मुखोपाध्याय महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा और मानवाधिकार: पश्चिम बंगाल के विशेष संदर्भ में एक अनुभवजन्य अध्ययन (2007) (अप्रकाशित पीएचडी थीसिस बर्दवान विश्वविद्यालय पश्चिम बंगाल)।

के. रजनी कुमारी, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न: एक सामाजिक-कानूनी अध्ययन (2005) (अप्रकाशित पीएच.डी. थीसिस श्री कृष्ण देवराय विश्वविद्यालय अनंतपुर - 515 003 ए.पी.)।

संतोष कुमार, महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा की एक सामाजिक चिंता: कानूनी नियंत्रण और न्यायिक प्रतिक्रिया (2021) (अप्रकाशित पीएचडी थीसिस यूनिवर्सिटी ऑफ़ लखनऊ, लखनऊ उत्तर प्रदेश)।

डॉ. एम. चेल्लामुथु, "भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा" शानलैक्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स, साइंस एंड ह्यूमैनिटीज, वॉल्यूम 4 अंक 2 अक्टूबर 2016।

संजीव कुमार और प्रियंका, "महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराध: निजता का अधिकार और अन्य मुद्दे", जर्नल ऑफ लीगल स्टडीज एंड रिसर्च, वॉल्यूम 5 अंक 5 अक्टूबर 2019। www.jlsr.thelawbrigade.com पर उपलब्ध (अंतिम बार 5 जून, 2022 को देखा गया)).

डॉ. टी. सदाशिवम, "भारत में महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराध" थर्ड कॉन्सेप्ट एन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आइडियाज वॉल्यूम। 34 नंबर 398-399 अप्रैल - मई 2020।

डॉ. एस.प्रिसिला शेरोन, "भारत में महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा: एक पारिवारिक खतरा" इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च वॉल्यूम - 4, अंक - 12 दिसंबर विशेष अंक - 2014।

राकेश चौधरी, मनीष कैथवास, गौरव राणा "भारत में महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा एक अध्ययन" पैनेसिया इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल, खंड 1, संख्या 2

सुश्री आर कलैयारासी, "भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा" आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, खंड 20, अंक 2, संस्करण। तृतीय फरवरी 2015।

दीपक कुमार वर्मा, विनोदिनी वर्मा, अनामिका पाल, दृष्टि वर्मा "भारत में महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराधों की पहचान और शमन" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एडवांस्ड रिसर्च इन कंप्यूटर एंड कम्युनिकेशन इंजीनियरिंग, वॉल्यूम। 11, अंक 4, अप्रैल 2022